वेदों में समान हैं ब्राह्मण छत्रिय वैश्य शूद्र सब।

वेद संसार के सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ हैं और उनमें कोई भी बात ऐसी नहीं है जो बुरी कही जाये। फिर भी पूर्वाग्रहों से भ्रांत कुछ विद्वान आक्रोशवश कभी कभी वेदों के बारें में बेसिरे पैर की बातें बक जाते हैं, ऐसी ही एक बकवास हाँ. अम्बेडकर ने की है उनके शब्द हैं !

'' वेद बेकार की चार पुस्तकें मात्र हैं। न उन्हें पवित्र मानने की आवश्यकता है और न निभ्रान्ति। ब्राह्मणों ने वेदों की पवित्रता और निभ्रान्तता प्रदान की है क्योंकि 'पुरूष-सूक्त' नाम के एक बाद में डाले गये प्रक्षिप्त अंश ने उन्हें पृथ्वी का स्वामी बना दिया है। किसी में भी इतना साहस नहीं है कि पूछे कि इन निकम्मी-किताबों को, जिनमें अपने शत्रुओं को नष्ट करने के लिये देवताओं का आह्वान किया गया है, उनकी सम्पत्ति को लूटकर अपने लोगों में बाँट देने के लिए कहा गया है, पवित्र और निभ्रान्ति क्यों बनाया गया है ? इसलिये समय आ गया है जब उन मूर्खतापूर्ण मान्यताओं से, जिनका ब्राह्मणों ने प्रचार किया है, हिन्दू-मस्तिष्क को मुक्त किया जाय। यदि मुक्ति प्राप्त नहीं हुई , तो भारत का कोई भविष्य नहीं। मैंने भली प्रकार यह जानते हुये भी कि इसमें बड़ा खतरा है, ऐसा करने का बीड़ा उठाया है। मुझे परिणामों की चिंता नहीं। यदि मैं जनता को जाग्रत कर सका, तो मुझे प्रसन्नता होगी।''

(सन्दर्भ: हम दलित, नवम्बर १९९३, पृष्ठ १४)

लगता है डॉ. अम्बेडकर आधुनिक शुक्राचार्य हैं। उनका प्रहार वेद के जिस पद्य पर है वह है 'पुरूष-सूक्त' का ११ वाँ पद; जो इस प्रकार है-

''ब्राह्मणोस्वमुखमासीद्बाहू राजन्य: कृत:।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यय: पद्भ्यांशूद्रोऽअजायत ॥यजु ३१।११''

॥ अर्थ ॥

''हिन्दुत्व'' के विश्वविश्रुत लेखक प्रोफेसर रामदास गौड़ इस का अर्थ इस प्रकार करते हैं- '' (ब्राह्मणोस्य मुखमासीत्) इस पुरूष की आज्ञानुसार जो विद्या सत्यभाषणादि गुणों और श्रेष्ठ कर्मों से ब्राह्मण-वर्ण उत्पन्न होता है वह मुख्य-कर्म तथा गुणों के सहित होने से मनुष्यों में उत्तम कहलाता है। (बाहू राजन्य: कृत:) और ईश्वर ने बल पराक्रम आदि पूर्वोक्त गुणों से युक्त छत्रिय वर्णों को उत्पन्न किया। (उरूतदस्य.) खेती व्यापार और सब देशों की भाषाओं को जानना तथा पशुपालन आदि मध्यम गुणों से वैश्य वर्ण सिध्द होता है। (पद्म्यांशूद्रो.) जैसे पद सबसे नीच अंग है, वैसे मूर्खता आदि नीच गुणों से शूद्र वर्ण सिध्द होता है।''

(सन्दर्भ: हिन्दुत्व, पृष्ठ ३६,१५ कार्तिक, १ वर्ण ५ दि.)

यह एक अर्थ है- अभिप्राय: नहीं है। अभिप्राय के लिये हमें पूरा वेद पढना पड़ेगा। जहाँ तक मेरी जानकारी की पहुँच है वहाँ तक मैं यह बात दावे के साथ कह सकता हूँ कि वेदों में चारों वर्णों का पृथक पृथक वर्णन तो है पर वहाँ प्यार-घृणा का कोई आधार नहीं है। मनुष्य के बहाने वेदो में समाज का चित्रण है। और समाज में मनुष्य की भाँति हर अंग की समान भूमिका है। यदि सर्प देख कर मस्तिष्क बचने कि आज्ञा देता है और पैर न चलें तो मनुष्य रूपी समाज मर जायेगा। यहाँ मस्तिष्क का और पैरों का कार्य बराबरी का है- समानता का है, यही वेदों का तात्पर्य है। वेद एक मनुष्य की व्याख्या नहीं- मनुष्यों के सम्पूर्ण समाजकी पूर्ण और सम्यक-व्यवस्था है। पैर मस्तिष्क की जगह नहीं आ सकता और न मस्तिष्क ही पैर की जगह आ सकता है। सबकी भूमिकायें हैं पर समानता के आधार पर हैं

मनुष्य को छिद्रान्वेषी नहीं होना चाहिये। उसे हर वस्तु विराटता के परिप्रेक्ष्य में लेनी चाहिये। अथर्ववेद (१०,६२,१) में एक मंत्र है-

''प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥''

॥ अर्थ ॥

'हे परमात्मन्। आप मुझे ब्राह्मणों का, छत्रियों का, शूद्रों का और वैश्यों का प्यार मना दे।''

इसमें सब वर्णों (ब्राह्मण, छत्रिय, वैश्य,शूद्र) के प्रति समानता के आधार पर प्रेम-प्रीति का व्यवहार करने को कहा गया है। इसमें भला क्या बुराई हो सकती है ? वेद की इस वर्ण विभाग परिकल्पना में एक दूसरे की पारस्परिक-सहायता और सेवा की ही तो सीख विद्यमान है वेद के हर भाष्यकार ने यही कहा है।

आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति महोदय लिखते हैं कि- ''ऋषि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में शूद्रों के साथ भी प्रेमप्रीतिपूर्वक बर्ताव करने की बात पर बल दिया है। उन्होंने शूद्रों के साथ अस्पृश्यता या अछूतपन के बर्ताव को सर्वथा अनुचित माना है। उन्होंने तो सत्यार्थ प्रकाश के दशम समुल्लास में यहाँ तक भी लिखा है कि अन्य वर्ण वालों को अपने घर में भोजन बनाने का काम शूद्रों से करना चाहिये। वर्ण-१०.००) में ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को शरीर के मुख, भुजा, मध्यभाग और पैरों से उपमा दी गयी है। इस उपमा से यह स्पष्ट सूचित होता है कि जिस प्रकार शरीर के ये चारो अंग मिलकर एक शरीर बनाते हैं, उसी प्रकार ब्रह्मणादि चारो वर्ण मिलकर एक समाज बनाते हैं। जिस प्रकार शरीर के चारो अंग एक दूसरे के दुख-सुख को अपना दुख-सुख अनुभव करते हैं, उसी प्रकार समाज के ब्राह्मणादि चारो वर्णों के लोगों को एक दूसरे के दुख-सुख को अपना दुख-सुख समझना चाहिये। यदि पैर में काँटा

लग जाये तो उसे निकालने के लिये हाथ भी पहुँचते हैं और आवश्यकता पड़े तो दाँतों से काँटा निकालने के लिये मुख भी तैयार हो जाता है।''..... आज समाज के पैर में नफरत का जो काँटा गड़ गया है, उसे ब्राह्मणरूपी मुख को अपने तीखे दाँतों से निकालकर फेंक देना चाहिये। आज भारत सरकार की संसद कल्याणमंत्री श्री सीताराम केसरी के सुझाव पर सरकारी-नियुक्तियों में ५० प्रतिशत के आरक्षण के प्रावधान का बिल पेश करने वाली है। यह पैर रूपी शूद्र के काँटे को ब्राह्मण रूपी मुख से निकालने वाली बात का जीता जागता उदाहरण है। स्वामी विवेकानन्द ने ठीक ही कहा था कि यदि हिन्दू समाज को ब्राह्मणरूपी-सर्प ने डसा है तो उसी को विष खीचंना चाहिये। तभी हिन्दूसमाज स्वस्थ रह सकेगा। यह ५० प्रतिशत का आरक्षण विष खींचने के समान है।

पैर के बिना हर प्राणी रेंगता है। पैर ही प्राणी को जिवंत बनाता है। भगवान के मुख, भुजा और उदर से कहीं जादा महत्वपूर्ण हैं पैर, जिनसे मोक्ष प्राप्त होता है।

सम्पूर्ण वेद समानता से भरे पड़े हैं। यजुर्वेद (१८.४८) में एक मंत्र है -

''रूचन्नोधेहि ब्राह्मणेषु रूचंराजसुनस्कृधि।
रूचं व्विश्श्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रूचारूचम्॥

यजु. १८-४८

॥ अर्थ ॥

'हे परमात्मन्! आप हमारी रूचि ब्राह्मणों के प्रति उत्पन्न कीजिये, क्षत्रियों के प्रति उत्पन्न कीजिये, वैश्यों के प्रति उत्पन्न कीजिये और शूद्रों के प्रति उत्पन्न कीजिये।'

इसका सीधा साधा भाव यह है कि है परमात्मन्! आप की कृपा से हमारा स्वभाव और मन ऐसा हो जाये कि ब्राह्मण, छत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी वर्णों के लोगो के प्रति हमारी रूचि हो। सभी वर्णों के लोग अच्छे लगें। सभी वर्णों के लोगों के प्रति हमारा बर्ताव सदा प्रेम और प्रीति का रहे।

॥ शूद्रों को वेदाध्ययन का अधिकार है ॥

वेदो के सबसे बड़े भाष्यकार महर्षि दयानन्द ने सभी मनुष्यों और सभी वर्णों के लोगों के लिये वेद पढने के अधिकार का समर्थन किया है। सबको समानता के साथ एक ही घर में रहने का स्पष्ट-वर्णन ऋगवेद के इस मंत्र (ऋग्. ९.११.३) में इस प्रकार कहा गया है -

''कारूरंह ततो भिषगुपल प्रक्षिणी नना।
नानाधियो वसूयवोऽनु गा इव तस्थिम्॥''

॥ अर्थ ॥

एक परिवार का एक व्यक्ति कह रहा है कि - '' मैं कारू अर्थात शिल्पी हूँ, कारीगर, इंन्जीनियर आदि हूँ। मेरा पिता भिषक् अर्थात चिकित्सक है। मेरी माता उपल-प्रक्षिणी अर्थात् चक्की से अनाज पीसने का काम करती है हम सबके सब एक घर में इस प्रकार मिलकर रहते हैं जैसे की गौवें एक कोष्ट (बाड़े) में मिलकर रहती हैं।'

एक दूसरा मंत्र (ऋग. १०-९७-६) भी देखिये -

''विप्रः स उच्यते भिषग् रक्षोहामीवचातनः।''

॥ अर्थ ॥

इस मंत्र में भिन्नभिन्न वर्णों के कार्य करने वाले व्यक्तियों के एक ही परिवार के सदस्य होने की बात कही गयी है। पिता तो चिकित्सक है। वेद में चिकित्सा का व्यवसाय ब्राह्मण का व्यवसाय बताया गया है।

॥ व्याख्या ॥

चिकित्सा-कार्य निस्वार्थ सेवाभाव से करने का कार्य है। इसे ब्राह्मणवृत्ति का व्यक्ति ही भली भांति कर सकता है माता चक्की चलाने का काम करती है और लड़का शिल्पी का काम करता है। इन दौनों को वेश्य समझा जाता है और यदि शिल्पी बहुत ऊँची श्रेणी का इन्जीनीयर है तो उसे भी ब्राह्मण समझा जा सकता है। आटा पीसने वाली को शूद्र भी समझा जा सकता है। यदि कारीगर सादा टोकरी बनाता है तो उसे भी शूद्र समझा जायेगा। ..... यौं वेद जन्म पर नहीं, कर्म पर टिकी वर्ण- व्यवस्था को मानता है।

आज का भारत भी ऐसे ही वेद वाक्यों को आदर्श मानता है।

॥ निष्कर्ष ॥

लगता है डॉ. अम्बेडकर ने बिना वेद पढ़े ही अपना आक्रोश व्यक्त किया है। यदि वे वेद पढते तो ऐसा कभी न कहते। स्वँय उनके गुरू गौतम बुद्ध ने वेद के केवल उसी भाग की निन्दा की थी, जिस भाग में पशु बलि का विधान था अर्थात् 'वैदिकी हिंसा, हिंसा न भवति।' पर डॉ. अम्बेडकर ने तो पूरे वेद को ही बुरा भला कह दिया है जो सर्वथा अनुचित है।

वेदों की केवल तीन बार ही निंदा हुई है सतयुग में दक्ष के यज्ञ में सती के होम हो जाने पर भगवान शिव द्वारा, द्वापर में महाभारत-संग्राम में अर्जुन को उतारते समय भगवान कृष्ण द्वारा तथा प्रहिंसा का उपदेश देते हुये बुद्ध का वेद भाग को बुरा कहना जिसमें पशु हत्या होती थी तो भी ये तीनो महापुरूष वेदों द्वारा आज तक प्रशंसित हैं। बुद्ध के बारे में तो यहाँ तक कहा गया है।

''नमो वेद रहस्याय, नमस्ते वेदयोनये ।
नमो बुद्धाय शुद्धाय नमस्ते ज्ञानरूपिणे ।।''

अर्थ - 'वेद के रहस्य, वेद के मूल, शुध्द और ज्ञानस्वरूप बुध्द को नमस्कार है ।'

एक प्राचीन श्लोक में अंत्यज और विप्र सहोदर कहे गये हैं । श्लोक है -

''अन्त्यजो विप्रजातिश्च एक एव सहोदर ; ।
एकयोनि प्रसूतश्च एकशाखेन जायते ।।''

वर्णातीत- व्यक्ति ही आदर्श होता है । गीता कहती है-

''न यस्य जन्मकर्माभ्यां न वर्णाश्रम जातिभि : ।
संजतेऽ स्मिन्नहंभावो देहे वै स हरे : प्रिय: ।।''

।। अर्थ ।।

जिसे जन्म, कर्म, वर्णाश्रम का अहंकार नहीं है वही हरि को प्रिय है । ..... डॉ. अम्बेडकर काश ! वेद के इस भाग के भी दर्शन कर लेते तो अच्छा था । एकांगी-ज्ञान कभी भी हितकारी नहीं होता है । व्यर्थ का आक्रोश बेकार जाता है ।

हमारा आदर्श उस धर्मनिष्ठ जीवन जीने में निहित है जिसमें मानवजाति एकता के सूत्र में बंधी रहती है । रूद्राक्ष, तुलसी, त्रिपुण्ड, भस्म, यात्रा, स्नान, होम, जप या देव-दर्शन मनुष्य को पुनीत नहीं करते बल्कि प्राणियों की सेवा मनुष्य को पुनीत करती है-

'रूद्राक्ष तुलसी काष्ठं त्रिपुण्डं भस्मधारणम् । यात्रास्नानानि होमाश्च जपा वा देवदर्शनम् ।
'न एते पुनन्ति मनुजं यथा भूतहिते एति: ।।''

वेदों की जो तीन बार आलोचना हुई है वह वेदों में प्रक्षिप्त-अंशो के कारण नहीं - वेदो को गलत समझने के कारण हुई थी । सतयुग में दक्षरूपी व्यर्थ के कर्मकाण्ड से जब सती-रूपी ब्रह्मज्ञान सताया गया था तब; द्वापर में अर्जुन द्वारा वेदों को ही त्रिगुण मान लेने पर और त्रिपुणातीत-आत्मज्ञान पर न पहुँच पाने पर युद्ध को ही नकारने पर तथा तीसरी बार जब पशु-बलि से चर्मण्ववती-नदी में रक्त बहने पर और पशुओं के चमड़ो के ढेर के कारण नदी का नाम ही चर्मण्ववती पड़ गया था तब बुद्ध द्वारा वेद के इस भाग की निन्दा हुई थी । तीनो बार वेद को गलत समझने के कारण वेद-निन्दा हुई थी जो नासमझो ने तुरंत सुधार ली । पर यह चौथीबार की डॉ. अम्बेडकर द्वारा की गयी वेद-निन्दा एकदम बेकार है ।

जहाँ तक शत्रुओं के नाश के लिये देवताओं के अज्ञान की बात है वह भी सुनिये । भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में शत्रु उन आक्रांताओं को कहते हैं जो सीमापार से आकर हमें रौंदते थे जिन्हे हम म्लेच्छ, दैत्य, राक्षस, दानव और न जाने क्या क्या कहते थे । तथा देव हिन्दुओं को कहा जाता था - उन वीरवर आर्यों को जो इन आक्राताओं को मार भगाते थे । यही वेदों का राष्ट्रीयता थी । राष्ट्र कवि श्रीरामधारीसिंह 'दिनकर' ने अपनी प्रसिध्द कविता ''हिमालय'' में कहा है (आक्रांतो से) चीखकर कि-

''पद-दलित इसे करना पीछे, पहले मेरा सिर उतार ।''

डॉ. अम्बेडकर जैसे राष्ट्रीय-स्तर के नेता को तो कम से कम इतना समझ लेना चाहिये था । यही वैदिक-परम्परा है । सच है; सावन के अंधे को तो हरा हरा ही दिखलाई देता है । उनकी यह प्रतिज्ञा झूठी थी कि मैं हिन्दू नहीं मरूँगा । क्या बौद्ध हिन्दू नहीं होते हैं ? उनकी यह प्रतिज्ञा भी थी कि मैं राम को नहीं पूजूँगा ? क्या उनके गुरू गौतमबुद्ध अपने एक पिछले जन्म में राम नहीं थे ? और तो और, क्या वे अपने नाम के ''रामजी'' अंश को कभी हटा पाये थे ?

केवल दीक्षा लेने भर से 'कोई' महात्मा नहीं बन जाता ।

रसिक बिहारी मंजूल
द्वारा - फातिमा राजा अयर
सी ३३ -रिडस् लाईन,
विश्वविविद्यालय छेत्र,
दिल्ली - ११०००७.